

कुसुम

भाषा शिक्षण द्वारा जीवन मूल्यों में चेतना का सृजन

कुसुम

सहायक प्राध्यापिका (हिन्दी)

राजकीय शिक्षा महाविद्यालय,

सेक्टर- २० डी, चण्डीगढ़

Email ID: kusumhindi06@mail.com

1. मानव जीवन में भाषा का महत्व: - हृदय की उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाली भव्यता जब भावों में परिवर्तित होती है, उससे भावनाओं का सृजन होता है, जो भावुकता से परिपूर्ण होती हैं, उस भव्यता, भावुकता और सम्वेदनाओं को मूर्त रूप से अभिव्यंजित अथवा शब्दायित करने के माध्यम के रूप में जीव मात्र जिस संप्रेषणीयता अथवा माध्यम को व्यवहार में लाता है, उसका नाम है भाषा। भाषा मात्र मानवीय नहीं होती, इसका प्रयत्न अथवा परोक्ष सरोकार जीव मात्र से है, वह प्रत्येक जीव जिसमें जीवन है, अनुभूतियाँ हैं, भाव हैं, अहसास हैं, महसूस करने की क्षमता हैं, वे सब जीव मात्र इसके क्षेत्र में आते हैं। अनुभूतियों का इससे सीधा-सीधा सम्बन्ध है, वे चाहे जैसी भी हों, जिसकी भी हों, उसमें केवल मानवीय अनुभूतियों को सम्मिलित करना भाषा का संक्षिप्तिकरण करना जैसा होगा। कुछ जीवों की भाषा हम नहीं जानते और न जाने संसार में कितने जीव और मानव हैं जो हमारी अभिव्यक्ति को समझने में असमर्थ हैं। संसार में छः हजार पांच सौ बोलियाँ बोली जाती हैं, उनमें भी मानवेत्तर बोलियाँ इन बोलियों में सम्मिलित नहीं हैं, जोकि इनसे अधिक हैं, अन्य प्राणियों की संख्या मानवीय सम्वेदनाओं से परिपूर्ण जीवों से हजारों गुना अधिक है। इस कारण उनकी भाषा भावनाओं और अनुभूतियों का वर्गीकरण करना अव्यावहारिक ही होगा।

हमारा लक्ष्य मानव जीवन की अनुभूतियों को अभिव्यंजित करने वाले उस माध्यम से है, जिसको समाज ने भाषा का नाम दिया है, कुछ ऐसी अनुभूतियाँ भी हैं कुछ जीवों की जिनकी कोई भाषा नहीं होती, वे उन्हें हावभाव या इशारों से इंगित करके अपना भाव बोध स्पष्ट करते हैं, ऐसा मानव जीवन के साथ भी होता है। जब भावों का ज्वार अतिरेक की सीमा को पार कर जाता है। शब्द बुनने की क्षमता क्षीण हो जाती है, जिस अनुभूति को किन्हीं शब्दों में पिरोया नहीं जा सकता, बांधा नहीं जा सकता, केवल अनुभूति तक जो सीमित रहते हैं, उनको भी हाव-भाव अथवा इशारों के माध्यम से सम्प्रेषणीयता देकर गतिमान



कुसुम

किया जाता है। मूक मन की भी अपनी एक भाषा होती है , जिसको आवेगों के संवेगों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी जाती है।

चूँकि आलेख केवल मानव जीवन से संदर्भित है , इस कारण इसका सीमांकन मानवीय सुखानुभूति, दुखानुभूति, सहजानुभूति, असहजानुभूति तक ही विवेचित और विश्लेषित किया जायेगा। यह विवेचन, विश्लेषण और मीमांसन भी शिक्षण को बीच में रखकर किया जाना है। एक शिक्षक किन ऐसी सशक्त सम्प्रेषणीयताओं का प्रयोग करे, जिससे उसका शिक्षण अधिकाधिक प्रभावशाली अदभुत, अनूठा और ग्राह्यतापूर्ण बने। उसकी ग्राह्यता कितनी गहरी हो जो छात्रों के मन और मस्तिष्क को सीधी-सीधी छुए। वह उसे अधिकाधिक सरलता से आत्मसात कर व्यवहार में ला सकें। ऐसी भाषा जिसके लिए उनको बगलें न झाँकनी पड़े। किसी का सहारा न लेना पड़े। किसी शब्दकोश की शरण में न जाना पड़े। जो सुने वह सटीकतापूर्वक उनकी अनुभूतियों की मनोदशा को उद्वेलित और आन्दोलित करता हुआ, उनके जीवन में उतर जाए। जिसमें विषयवस्तु की अतिशयता और संक्षिप्तता का अभाव हो। जो तथ्य-कथ्य के इर्द-गिर्द ही घूमता हो। उसे जोड़ना न पड़े। वह विषयवस्तु से जुड़ा हुआ ही प्रतीत हो।

यह तभी सम्भव है जब एक शिक्षक जो कहना चाह रहा हो, उसे दो टूक साफ शब्दों में स्पष्ट ढंग से सामने वाले के समक्ष परोसने की क्षमता रखता हो। यह क्षमता उसके भाषा पर असाधारण अधिकार और विषय के प्रति किए गए गृहकार्य पर निर्भर करती है। जो अधिक लम्बाई की अपेक्षा गहराई को अधिक महत्व देता है। उसमें उवाऊपन कम और सारगर्भितता अधिक होती है। हम साक्ष्यों के सापेक्ष अपनी बात कहने का प्रयास करते हैं तो वह अधिक व्यापक प्रभाव डालती है इसके इतर यदि कोई ताना-बाना बुना जाता है तो हम श्रोता को उस ताने-बाने से आप्लावित करने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। निष्कर्ष यही निकलता है कि सौ गुना कहा गया और नौ गुना भी आत्मसात कराने में असमर्थ रहे।

“भाषा हमेशा जीवित रहती है, भाषा का निर्माण पूरे समाज के हित साधने के लिए लोगों के पारस्परिक सम्पर्क सूत्र में समाज के सभी लोगों के लिए हुआ है। यदि एक भाषा सभी लोगों की समान रूप से भाषा होने का गुण छोड़ देती है। यदि वह किसी एक सामाजिक समूह को प्राथमिकता और समर्थन दूसरे सामाजिक समूह को हानि पहुँचा कर देती है, तो अपने मूल गुण से च्युत हो जाती है। समाज के घटकों के बीच का साधन रह ही नहीं जाती



कुसुम

। वह किसी एक सामाजिक समूह की वर्ग भाषा होकर रह जाती है। वह हवासोन्मुख हो जाती है। उसका विलुप्त हो जाना निश्चित हो जाता है।¹ मानव जीवन ही नहीं जीव मात्र के जीवन में भाषा का उतना ही महत्व है, जितना उसके जीवन को जीने का महत्व है। यह भावों की पृष्ठभूमि का उत्पाद है। जो मन और मस्तिष्क की भाव भंगिमाओं को छूता हुआ अभ्यान्तर से वाह्यान्तर होता है। इसका आगमन और निगमन मानव जीवन की आधारशिला है।

2. जीवन की अनुभूतियों की वास्तविक अभिव्यक्ति:- जीवन नितान्त व्यक्तिगत रूप से अर्जित किया जाता है। यह पाया या खरीदा नहीं जा सकता। हाँ जन्म जरूर किन्ही निश्चित कारकों के द्वारा पाया जाता है। जीवन हमारे निज के आचार-विचार क्रिया-कलाप और व्यवहार से निष्पन्न होता है। उसके उत्थानों और पतनों के कारण, कारक और निदान हम स्वयं होते हैं। हमारे जीवन को जीने की दशा उसकी दिशाओं का निर्धारण करती है। हमारी जीवन सरिता का बहाव उत्थनोंन्मुख है अथवा पतनोंन्मुख, इसके निर्धारक और निर्णायक हम स्वयं हैं। यदि हमारे जीवन को जीने में कोई रहस्य नहीं है। दुराव नहीं है। उसमें स्पष्टता है। पारदर्शिता है। कथनी करनी में अन्तर्द्वन्द्व विभेद द्वेत नहीं है तो हमारी अभिव्यक्ति उन वास्तविक जीवन मूल्यों को उकेरेगी जो निःसन्देह सार्थक हैं। जो जीवन के सरोकारों से जुड़े हैं। वे अपना ही नहीं उनका मार्ग भी प्रशस्त करते हैं, जिनको इनकी आवश्यकता है। इस अभिव्यक्ति पर व्यक्ति की मौलिकता और अमौलिकता का व्यापक प्रभाव पड़ता है। आपने यदि किसी सत्य को जीया है तब वह आपका मौलिक अनुभव हुआ। आपने सुना या पढ़ा है। वह मौलिक नहीं उधारी अनुभव हुआ। हमारी आत्मा की अभिव्यंजना को जो कारक झकझोरते हैं। उसमें उथल-पुथल, हलचल, उपद्रव, आन्दोलन प्रसूत करते हैं। उनकी अनुगूँज से जो शब्दावली निस्सृत होती है। वह हमारी मौलिक अभिव्यक्ति हुई, इस मौलिकता को जब आत्मसात के धरातल से अभिव्यक्त किया जाता है तब उसमें वास्तविकता के असीम आनन्द की अभिव्यंजना होती है। भाषा हमारे भावों के सरोकारों में निमग्न होकर सृजित हो तो भाषा है अन्यथा वह एक वाचालता की श्रेणी में रखने योग्य है।

जीवन को जीने में जो चुनौतियाँ, ललकारें, जोखिम, उल्लास अथवा मुदिता की हम अनुभूति करते हैं। भाषा उसका सजीव रूप प्रस्तुत करती है तो उसमें भीनी-भीनी सद्गंध उत्पन्न होती है। जिसको जिन मानदंडों और उच्चता के धरातल से अभिव्यक्त किया जाता है



कुसुम

। वह उतने ऊँचे मानदण्ड स्थापित करने में समर्थ होती है। भावों के अभाव में भाषा शुष्क पत्ती के समान है। जिसका रस सूख चूका है। जिसमें प्रभावोत्पादकता की न्यूनता गोचर होती है। “अवधारणाएँ विचारधारा के सूत्र हैं। मस्तिष्क के सर्वश्रेष्ठ उत्पाद का सार संचित रूप हैं। घटनाओं से लेकर दर्शन तक की यात्राएं हैं। यह विचार सम्प्रति निरपेक्ष नहीं है। किसी वर्षा और खुदाई में अकस्मात नहीं मिली है। यह सामाजिक उपलब्धियाँ हैं। मूल्य और अवधारणाएँ ही प्रकृति और जगत की व्याख्या बनकर दर्शन में परिवर्तित होती हैं। सामाजिक संस्था के व्यावहारिक पक्ष में व्याख्या की शक्ति बनती है। सौन्दर्य के उत्पादन और पुनःसर्जन के लिए कला और साहित्य के सिद्धांत बनती है। अपने अप्रतिम विस्तार और अंतिम प्रारूपों में सम्पूर्ण जीवन बनकर अखिल विश्व में रम जाती है।”² जो गुजरती है उसको कैसे और किस तरह सहा जाता है उसकी शब्दावली अनुभव से उत्पन्न शब्दावली होती है। मुख और मस्तिष्क में जब भेद समाप्त हो जाता है। जीभ और संवेदन जब एक पथ के पथिक बन जाते हैं, तब अनुभूति का जन्म होता है, यह उधार नहीं होती नगद होती है हँसती है रुलाती है कहीं आत्मसात कर लेती है तो कहीं उगल देती है।

शब्दाडम्बर से मुक्त होकर भाषा ताल ठोकती है तब उसका सटीक प्रभाव होता है। दिखावटी पांडित्य केवल शब्दों की कोरी चलावाजी है। उसमें गहनता, गम्भीरता और गहराई का अभाव होता है। बोधगम्यता के धरातल पर वह कगारों पर बैठी दृष्टिगोचर होती है। वह अनुभूतियों के सागर में डूबकर उसकी वास्तविकता अंगीकार करने के अवसरों के प्रतिकूल होती है। जब अपनी बात भी उनकी भाषा में कही जाती है जिससे हम कह रहे हैं तब उसका प्रभाव सामान्यतः अपनी बात अपनी भाषा में कहने की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करती है। अनुभूतियों के सजीव चित्रण के लिए हमें भी सचेत और सचेष्ट और तत्पर रहने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी की उनको जिनसे हम अपनी बात कह रहे हैं।

3. अभिरुचि के अनुकूल ग्राह्यता:- देश, काल और वातावरण से इतर होकर कह गये तथ्य अभिरुचियों और अनुभूतियों को प्रेरित करने में असमर्थ रहते हैं। अपने कथ्य से पहले अपनी जमीन का मूल्यांकन करना नितान्त आवश्यक होता है। आंग्ल भाषा भाषी के जानकारों के संस्कृत, पंजाबी, फ़ारसी इत्यादि भाषाओं में अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना उतना सार्थक, प्रभावी नहीं होगा जितना की आंग्ल भाषा में उनके समक्ष कह कर प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है। वैचारिकी उद्बोधन से पूर्व विचारक यदि अपने पैरों के



कुसुम

नीचे की जमीन का ध्यान रखता है। वह खड़ा कहाँ है? तब वह अधिकाधिक ग्राह्यता प्रसूत करता है। शब्दों के जाल को फैलाने से पूर्व इसका अध्ययन भी आवश्यक है की यह जाल जिनके निमित्त है वे इसकी सीमा में हैं भी या नहीं। वे हमारे सारगर्भित शिक्षण को अपने सिर के ऊपर से निकलता तो महसूस नहीं कर रहे हैं। वह अपचनीय तो नहीं है। भाषा शिक्षण में भाषियों की मनोदशा की गहराई उनकी सोच और समझ के धरातल की अनदेखी सुखद नहीं होती। किसी को बलपूर्वक रूचि के विपरीत बाध्य रोक पाना आज के समय में दुरुह ही नहीं असम्भव भी है। “मनुष्य का रसबोध भी परिवर्तनशील है यद्यपि यह परिवर्तन आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के समान शीघ्र नहीं होता, न उसकी तरह ऊपर से देखने से स्पष्ट होता है। पौराणिक गाथाओं को लीजिये एक समय यूनान भारत तथा अन्य देशों में असाधारण चमत्कारों से पूर्ण इन गाथाओं की धूम थी। फिर क्रमशः साहित्यकार इन्हें अपनी विषयवस्तु के लिए अस्वीकार करने लगे। गद्य से प्रायः उनका बहिष्कार हो गया। पद्य में पहले की अपेक्षा उनका स्थान संकुचित हो गया।” 3 रसबोध देश, काल और वातावरण के विपरीत जाने का साहस तभी उठा सकता है, जब उसमें घर फूंक तमाशा देखने का साहस हो। सटकर चलना तो स्वाभाविक है लेकिन हटकर और कटकर चलना जोखिम भरा था, है और रहेगा।

सिर उठाकर मत चलिए आज के जमाने में ॥

जान चली जाती है होंसले दिखाने में ॥

कबीर, रविदास, दादू, बोधा, अछूतानन्द, वेवूफ, सुकरात, ब्रूनो इत्यादि ऐसे अनेक कवि, लेखक, दार्शनिक समाज सुधारक हुए। जो समाज के रसबोध के साथ अपने को जोड़ने में असमर्थ रहे उन्होंने सच, यथार्थ, सटीक कहा अन्ततः अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। उनके हाथों का शिकार होना पड़ा जो अन्धेरे में रहने के आदी हो गये थे। वे उनकी अभ्यस्तता को तो परिवर्तित करने में असमर्थ रहे लेकिन मर कर अमर हो गये।

4. सरलता सहजता की बोधगम्य स्वीकार्यता:- भावाभिव्यञ्जना जितनी अधिक मारक सहजता और सरलता की होती है उतनी दुरुहता की नहीं। हल्का-फुल्का रहना और कहना दिखावे से अधिक प्रभावी होता है। दुरुह और जटिल वचन पुस्तकों की शोभा बढ़ाते रहे उनका समाज में संचरण नहीं हो पाया जबकि सरल और सहज उक्तियाँ आम जन तक पहुंची हैं। उसकी सम्प्रेषण शक्ति गतिमान रही, उसमें कोई बाधा अथवा व्यवधान नहीं आया जब शिक्षक की भाषा को शिक्षार्थी समझेगा ही नहीं तब वह उसे आत्मसात कैसे करेगा। उसको समझने के लिए उसके चिन्तन, सोच और बोध में उन्नीस-बीस का अंतर हो तो भी कुछ अकथनीय नहीं होगा। अपाच्य नहीं होगा। लेकिन शिक्षक और विद्यार्थी में अन्तर दस और बीस का हो



गया तब वह न केवल ऊवाऊ उपेक्षापूर्ण होगा असह्य भी होगा । भारतीय संविधान के 375वे अनुच्छेद में कहा गया है कि “संघ का कर्तव्य होगा की वह हिंदी भाषा की सामाजिक संस्कृति के सम्पूर्ण तत्वों की अभिव्यक्ति बन सके इसके प्रसार एवं प्रयोग व इसे समृद्ध करने के लिए इसकी प्रकृति में हस्तक्षेप के बिना अनुसूची में निर्दिष्ट अन्य भाषाओं के रूपों को आत्मसात करते हुए इसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।”⁴ भाषा में सुत्रात्मकता हो उसमें तोड़ने नहीं जोड़ने की क्षमता हो । उसकी अपनी निश्चित लिपि, व्याकरण, शब्द-विन्यास, सृजन एवं निर्मित होने की प्रक्रिया हो । उनका निर्माण सार्थकतापूर्ण और सोद्देश्यपूर्ण हो, जिनमें उनके निर्माण की प्रक्रिया के मूल भाव की व्यंजना सन्निहित हो। “जैसे उद्योग धन्धों की एक टेक्नोलॉजी है वैसे ही भाषा वैज्ञानिक धंधे की एक टेक्नोलॉजी है । टेक्नोलॉजी में टेक्नीकल शब्दों की भरमार हो तो उसे विज्ञान समझने के भ्रम से बचाना जरूरी है ।”⁵ शब्द अपने स्वभाव को सुनिश्चित करे । उसकी रचना प्रक्रिया में वे भाव सन्निहित हो, जिस उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए उसका प्रयोग किया जा रहा है । उसकी दुरुहता उसकी बोधगम्यता को क्षीण करने में समर्थ न हो सके । शब्दाडम्बर की आँधी पाठक को दिग्भ्रमित करती है । वहीं स्थिति किसी श्रोता अथवा विद्यार्थी की होती है। समानार्थक शब्द कहीं-कहीं वह विभेद उत्पन्न करते हैं । जिनके कारण किम कर्तव्य विमूढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । मस्तिष्क की क्रियाशीलता विक्षुब्ध होकर सन्न हो जाती है । कौन अपेक्षित और कौन अनपेक्षित की स्थिति दुराशा उत्पन्न करती है । उसकी सटीकता डगमगाने लगती है भाव विचलित होने लगते हैं वितृष्णा उत्पन्न होने लगती है ।

5. सटीक प्रभाव के कारण जीवन मूल्यों के अनुशीलन में अनुकूलता:- मूल्यों का आशय उन मानदण्डों से होता है जिनको हमने अपना जीवन जीने के लिए निर्धारित किया । ये किसी ने बलात हम पर लादे नहीं हैं । ये हमारी आकाँक्षा की परिपक्वता के द्योतक हैं । कोई कहाँ तक जाना चाहता है । वह वहाँ तक पहुँचेगा कैसे ? मूल्य उस पगदंडी का निर्माण करते हैं जिन पर से होकर कोई जीव अपने लक्ष्य तक पहुंचता है । मूल्य जीव और लक्ष्य के बीच का सेतु होते हैं । इस सेतु के अभाव में लक्ष्य तक पहुँचना नामुमकिन होता है । जब छात्र अथवा श्रोता की पहुँच कथ्य तक होती है वह सावधानी से उसे स्वीकार ही नहीं करता अंगीकार कर जीवन में उतारने का भरसक प्रयास करता है । इसके विपरीत यदि कोई कथ्य के तथ्य को समझेगा ही नहीं तो उसे आत्मसात कर जीवन में उतरेगा कैसे । वह उसमें तदाकारता की अनुभूति को तल्लीनता की सीमा के पार तक कैसे ले जा सकता? आद्यन्त जानकारी से पहले कोई कदम उठा पाना किसी जीव के लिए भी यदि उसमें विवेक है तो सार्थक नहीं होता। जहाँ तक भारतीय सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है, यह राष्ट्र लोकतान्त्रिक मूल्यों का पोषक था, है और इसकी अक्षुण्यता बनाए रखने को यह प्रतिबद्ध है । करुणा, दया और मैत्री के साथ स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, न्याय, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता इसके

प्राणों में बसी है। संस्कृति विहीन छदम अलगाववाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद तथा विघटनकारी तत्वों के साथ इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। “भारत में शिक्षा का स्वरूप इतना पेचीदा है की उसके बारे में स्पष्ट रूपरेखा बना सकना कठिन है, फिर भी हमारी उन परम्पराओं को देखते हुए, जिन्होंने हमेशा बौद्धिक चारित्रिक मूल्यपरक आध्यात्मिक उपलब्धियों को महत्व दिया है, इसमें किसी तरह का शक नहीं है, कि हम अपने उद्देश्यों को हासिल करने में कामयाब होंगे।”⁷ कौतुक भरे आज के इस कम्प्यूटर के युग में रहते हुए भी जीवन को उद्देश्यपूर्ण और सार्थक बनाए रखने के लिए हमें आध्यात्मिकता की ओर दो चार कदम चलने की फिर आवश्यकता महसूस होती है। हर ओर निरंकुशता, मौज, मस्ती होती देख किसी न किसी ऐसे आश्रय की आवश्यकता अनुभव होती है जहाँ एकांत में पल दो पल बैठकर आत्मालोचन कर अपने गन्तव्य को निर्धारित किया जा सके। अन्यथा समाज भीड़ में परिवर्तित होता जा रहा है। भीड़ का एक मात्र उद्देश्य विध्वंस के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इसमें आदमी जाते तो बहुत दिखाई देते हैं लेकिन कोई लौट कर आता दिखाई नहीं देता। जो गया वो गया और गयी उस की सामाजिकता उसके यम, नियम, सिद्धांत और संयम। “यूनेस्को द्वारा गठित जैक्यूस डेलेर्स की रिपोर्ट ने शिक्षा के चार स्तम्भों की जानकारी दी -

1. जानने के लिए शिक्षा
2. करने के लिए शिक्षा
3. बनने के लिए शिक्षा
4. एक साथ जीने के लिए शिक्षा

प्रथम के लिए शैक्षिक योग्यता आवश्यक है, द्वितीय के लिए कार्यकुशलता आवश्यक है, जबकि तृतीय और चतुर्थ के लिए मूल्यों की अवधारणा आवश्यक है।

6. जीवन मूल्यों में विस्तार की अपेक्षा गहराई का बोध:- जो मूल्य जीवन से जुड़े या उसके साथ सन्नद्ध हैं उनके अनुशीलन मात्र से दायित्व की इति नहीं हो जाती। उनको अक्षरशः अपने जीवन में उदात्ततापूर्वक उतर दूसरे के लिए एक आदर्श स्थापित करना आज की बड़ी आवश्यकता है। कहने से पूर्व करके दिखाना आज का समय आवश्यक मानता है जो एक शिक्षक कक्षा जैसा शिक्षण देता है यदि उसका आचार-विचार और व्यवहार भी उसी के अनुरूप है तो शिक्षार्थियों पर उसके शिक्षण का गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ता है इसके विपरीत आचरण करने वालों का शिक्षण हवाई होता है। इस कान से आता और दूसरे से निकल जाता है आदर्शवाद की शिक्षा देने से पूर्व आदर्शों को अपने जीवन में चरितार्थ करना अधिक आवश्यक होता है।

“जिन खोजा तिन पाईया, गहरे पानी पेठा।

में वपुरा बुढन डरा, रहा किनारे बैठ ॥-8

सतही जीवन को जीना सोदेशी नहीं होता । हम जिनको जीना चाहते हैं उसको पूरी निष्ठा और तल्लीनता के साथ जीयें । “हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठते हैं । हमें अपने जीवन द्वारा अपने छात्रों में प्राण फुंकने हैं । अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान एवं विद्या की ज्योति जगानी है अपने प्रेम द्वारा बालकों का उद्धार करना है उनके अमूल्य जीवन का सुधार करना है उस समय वे सत्य रूप में स्वाभिमान के अधिकारी बन सकेंगे तब वे ऐसी वस्तु प्रदान करने में सक्षम हो सकेंगे जो बेची जाने वाली नहीं है जो मूल्य देकर प्राप्त नहीं हो सकती उसी समय वे छात्रों के समीप सरकार द्वारा नहीं वरन धर्म के विधान तथा प्राकृतिक नियमों के अनुसार सम्मानित एवं पूज्यनीय बन सकेंगे ।” 9 वखान और व्याख्यान से कहीं दूर जाकर जब आत्मसात की स्थिति आती है तब सूर की एक पंक्ति ही रह जाती है –“ज्यों गूंगा मीठे फल का रस अंतर्मन ही भावे” शब्द बनते ही नहीं अनुभूति ही अनुभूति रह जाती है कोई प्रश्न, जिज्ञासा, लालसा जन्म ही नहीं लेते जो अब है सो सब है जब पेठ गहरे पानी के साथ हो जाती है तब आपा रह ही कहाँ जाता है । यदि कुछ रह गया तो मान लीजिये पेठ गहरी न हो सकी कुछ कमी रह गयी, जिससे जीवन का कुछ कूड़ा करकट फिर शेष बच गया जो बचना नहीं चाहिए था सारे प्रश्न तिरोहित हो जाने चाहिए थे । समझ को लम्बाई की अपेक्षा गहराई की बहुत आवश्यकता होती है ।

7. शिक्षकों द्वारा शिक्षार्थियों को शिक्षण उनकी भाषा में:- उपादेयता की दृष्टि से देखा जाय तो यह आवश्यक हो जाता है की भले ही शिक्षक किसी भी विषय का क्यों न हो लेकिन उसका शिक्षण उसकी भाषा में न होकर शिक्षार्थियों की भाषा में होता है, तब उसे अधिक गम्भीरता से आत्मसात किया जाता है । हमारे शिक्षकों की भाषाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं, लेकिन जो छात्र की भाषा है यदि वे उसमें अपना अध्यापन करते हैं तो छात्र उनको अधिक गम्भीरता से लेकर समझ सकेंगे । उर्दू के छात्र को संस्कृत के माध्यम से समझाना उसके साथ अन्याय होगा यदि उसे उसके माध्यम से समझाया जाय, तब वह समझेगा भी अधिक और अडचन भी पैदा नहीं करेगा । बात भले ही शिक्षक अपनी कहे, भाव भले ही उसके अपने हो लेकिन उनकी भाषा छात्रों की भाषा होगी तो उसको अधिक सुगमता के साथ समझा जा सकेगा । एक शिक्षक की भाषा से कहीं से भी ऐसा भान नहीं होना चाहिए कि वह किसी वर्ण, वर्ग, जाति, सम्प्रदाय विशेष का प्रवक्ता बनकर अपनी शक्ति के साथ छात्रों पर थोपने का बलपूर्वक प्रयास कर रहा है । उसे अपनी विषयवस्तु के साथ सन्नद्ध होकर बात कहनी है । यदि शिक्षक भाषा में किसी प्रकार का दोष है तब वह अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध नहीं हो सकती । ऐसा देखने, सुनने और पढ़ने में आया है कि कोई कितना भी बड़ा अधिकारी, कर्मचारी अथवा शासक हो, लेकिन जब उसके द्वारा वातावरण के विपरीत जाकर कोई बात कही जाती है चाहे वह कितनी भी उपयोगी क्यों न हो श्रोता समूह वक्ता की बातों की उपेक्षा करता है इस कारण उपद्रव भी होते हैं । वे सार्थकता

को भी प्रतिकूलता का लिवास उड़ाकर प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर उपद्रव करते हैं । विषय कोई क्यों न हो उसमें समकालीनता का कलेवर गोचर होना चाहिए तब ऐसा प्रतीत होता है जैसे इसी बात को वे सारे भी कहना चाहते थे । जिनसे हम अपनी बात कह रहे हैं । समकालीनता में राष्ट्र के विभिन्न भागों ने सक्रिय विघटनकारी प्रवृत्तियों को उकसाने और बढ़ाने वाली शक्तियों द्वारा राष्ट्रीय एकता को खण्डित करने तथा विकास के आन्दोलन को खत्म करने की साजिशें, भाषा, सम्प्रदाय, जाति और वर्ण के नाम पर फैलाई जाने वाली संकीर्णताएँ वैमनस्य, तनाव और दंगे बुद्धिजीवियों और पढ़े-लिखे युवकों के असंतोष को पथभ्रष्ट करने, उनमें कुत्सित मानसिकता भरने, आत्मकेंद्रित और समाज विमुख बनाने के दुष्क्रों पर भी शिक्षक का करारा प्रहार होना चाहिए । सारे मानव इस विस्तृत समाज की एक-एक इकाई हैं इन इकाइयों से मिलकर ही इस वृहद समाज का निर्माण हुआ है । अध्यापकों के प्रयास से समकालीन विद्रूपताओं पर प्रहार करने की दशा में छात्रों का होंसला बढ़ेगा वे अधिकाधिक समाजोपयोगी कार्य करने में अपने को लगा देंगे । “व्यक्तिवादी विचारधारा क्षीण होकर निर्जीव, विकृत, अस्वस्थ, यथार्थ विरोधी रचनाओं की सृष्टि कर रही है । यथार्थवादी विचारधारा मनुष्य के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य से ऐसी रचनाएं करने की ओर प्रवृत्त है, जिससे हमारी सामाजिक चेतना प्रखर हो और हमारी सौन्दर्य बोध की प्रवृत्तियाँ भी संतुष्ट हों ।”¹⁰

8. भाषा द्वारा भावों की सटीक अभिव्यंजना:- कोई भाषा चाहे कितनी भी समर्थ अथवा सक्षम हो, यदि कोई उसमें अपने भावों को पिरोने में असमर्थ है तब वह भाषा उनके लिए उपयोगी नहीं कही जा सकती क्योंकि वह जो कहना चाह रहा है उसको तो कह पा ही नहीं रहा था । भाषा सामर्थशीलता व्यक्ति की सामर्थशीलता से अविच्छिन्न है । उसको उससे पृथक करके नहीं देखा जा सकता उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन उसकी भाषा और उसमें गुथे भावों से ही सम्भव है। यदि भाषा में भाव और व्यवहारिता नहीं है तो एक श्रेष्ठ शिक्षक सामान्य शिक्षक से बहुत पीछे रह जाएगा । जब वह अपने विषय को तारतम्यता से नहीं जोड़ सकता, उसमें टूटन है तब किस तरह से वह विषय की गहराई से दूसरों को प्रभावित कर सकेगा । जो डूबा है वह डुबाने की क्षमता रखता है जो ऊबा है वह न तो डूब सकता है और न डूबा सकता है । “भाषा के कारीगरों ने अंतर्वस्तु को दर किनार करते हुए, भाषा की प्रोद्योगिकी को इतना विस्तार दिया है की शेष सम्पूर्ण विषय बौने हो गए हैं । भाषा का ताण्डव करते हुए मनुष्यता को चीड़ा-फाड़ा जा रहा है । वस्तुतः भाषा का यह खेल इस दौर में बहुत विस्तार से चल रहा है । इसलिए अपेक्षित है ऐसा अध्ययन किया जाय, जिसमें मात्र भाषा की कारीगरी न हो वरन समय की समूची अन्तर्वस्तु भी हो तो छलावे से दूर जाने की प्रतिज्ञाएं भी हों।”¹¹

कुसुम

हमारा उद्देश्य हिंदी भाषा को ऐसा रूप उपलब्ध करना बने, जिसकी विशालता की छाया में संसार की सभी भाषाएँ आकर विश्राम करने को उत्सुक हों । विज्ञ शिक्षकों, पाठकों, समाज सेवकों का एक ऐसा झुण्ड बने जो अपनी भाषा को क्रमिक विकास से जोड़े, इसका पतन न हो, उत्थान हो और उत्कर्ष हो, जिससे इसके पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले दोनों सुखानुभूति अनुभूत कर सकें । यह माना जा सकता है कि हमारा भारत राष्ट्र उभरती हुई विश्व की महा शक्ति है । संख्या बल के आधार पर हमारी संख्या विश्व में तीसरे नम्बर पर आती है । इसकी भाषियों की संख्या भी अधिक कम नहीं है फिर भी अभी यह प्रदेशों के उच्च शिक्षा संस्थानों की भाषा बनने में असमर्थ है ।

इसके कारणों पर गम्भीर विश्लेषणों की आवश्यकता है इसके प्रचार-प्रसार में कहाँ ऐसी चूक घर कर गयी है कि वह शिक्षकों और शिक्षार्थियों की एक मात्र भाषा बनने में संकोच कर रही है यह भी हो सकता है इसको स्वीकारने में कुछ तत्वों का बडप्पन रास्ते में आ रहा हो । हमारी भाषा का शिक्षण जितना समृद्ध होगा हमारा राष्ट्र भी उतना ही समृद्ध और विकास की प्रक्रिया में सबसे आगे-आगे होगा । भाव भाषा की जननी माने जाते हैं भावों के निर्माण में सर्वाधिक योगदान भावुकता, संवेदनशीलता, और उसकी अनुरक्ति से होता है । सम्वेदनशीलता के अभाव में भावों का जन्म नहीं होता । निष्ठुर, कठोर और क्रूर कुटिलता से परिपूर्ण हृदय भावनाओं का आगमन वैसा ही होता है जैसा हृदय का स्वभाव है । उसकी प्रकृति है, उसकी क्षमता है, उसकी लम्बाई भले ही कितनी हो गहराई के अभाव में भाषा की भव्यता तिरोहित हो जाती है, उसमें समग्रता और सम्प्रेषणीयता का अभाव रहता है।

9. सद्जीवन मूल्यपरक जीवन को जीने में सहयोगी:- जीवन को अपनी शर्तों पर जीना एक चुनौती जरूर है मगर इसमें सुख ये है की हम अपने द्वारा निर्मित रास्ते से होकर जीवन की यात्रा पूरी कर रहे हैं । न हम पर किसी का प्रभाव है, न दबाव है, हम किसी मान्यता के हाथ की कठपुतली भी नहीं हैं । न किसी के अनुचर हैं, न उपासक हैं, न अनुगामी हैं, न याचक हैं, न प्रार्थी हैं, न निवेदक हैं, न आज्ञानुसरणक हैं, हम जो कुछ भी हैं, स्वयं हैं, हमारी लगाम किसी दूसरे के हाथ में नहीं है । वह जैसे चाहेगा, हमको नचाएगा, हम नाचने के लिए विवश और बाध्य होंगे । ऐसा कुछ हमारी जीवन यात्रा से जुड़ा नहीं है । हम अपने दीपक आप हैं, जलेंगे प्रकाश होगा, नहीं जलेंगे तो अन्धकार में स्वयं भी रहेंगे और दूसरों को भी रखेंगे । हमारे ऊपर किसी लौकिक अथवा अलौकिक शक्ति का कोई साया नहीं है । जिससे हम सहयोग की अपेक्षा करेंगे । हलाकि आजतक किसी अलौकिक शक्ति ने किसी का सहयोग किया नहीं, उससे मन्नते जी भर कर माँगी गयी, याचनाएं की गयी अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की सूची भी उसके सामने रखी गयी, लेकिन सृष्टि के आरम्भ से आजतक किसी को किसी से मिला कुछ नहीं, जो पाया अपने द्वारा कर्म करके ही सब कुछ



कुसुम

पाया है। आराधना, उपासना, आरती, भजन, कीर्तन इत्यादि अनेक अनुष्ठानों ने समय और धन की बर्बादी तो करायी, लेकिन हाथ कुछ नहीं आया। हाथ वही आया जो अपने हाथ से किया। कुछ समय तो ऐसा लगता है, हम एकाकी हैं, एकांगी हैं, दूर तक हमारा साथी सहयोगी मार्गदर्शक पथप्रदर्शक प्रेरक प्रोत्साहक कोई नहीं है। लेकिन जब जीवन को जीने की हठ को हमने ठान ही लिया है तो उसके आगे-पीछे के जो कारक हैं, वे सब लवादे के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। परम्पराएँ, मान्यताएँ, रीति-रिवाज, लोकाचार, रूढ़ियाँ, मर्यादाएँ, नैतिकताएँ ये सरे तत्व बड़े छोटे पड़ जाते हैं। जब जीवन के सामने हम ताल ठोककर उसको जीने के लिए निर्भीकता से उसका वरण कर लेते हैं, जो होना है उसको हर हल में और हर काल में होना है फिर आशा किसकी? विश्वास अपने से अधिक किस पर? मिथ्या मान्यताओं ने भटकाने और अटकाने के अतिरिक्त कोई दूसरा कार्य नहीं किया। ये एक ओर हमें कायर, अकर्मण्य, निठल्ला और निकम्मा बनाती हैं, वही दूसरी ओर हमारे जीवन की समस्त ऊर्जा को ऐसी जगह व्यय कराती हैं, जिनका हमारे जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है। यदि कुछ है तो हम कब अस्वीकार कर रहे हैं कि वह नहीं है, वह है, होगा, हम हैं हमको हम दिखाई देते हैं, हमारा मूर्त रूप है, हम अमूर्त नहीं हैं, हम खवावों खयालों की वस्तु नहीं हैं, हम स्थूल यथार्थ हैं, फिर हम अमूर्त, अस्थूल, अलौकिक, काल्पनिक के फेरो में क्यों पड़े जो पड़ रहे हैं पड़ें, उनकी अनुगमन की प्रवृत्ति है, करे अनुगमन, उतारे आरतियाँ बजाएं ढोल, मंजीरे, खरताल ये वो जाने वे क्या करते हैं? क्यों करते हैं? निर्भीकता सफल शिक्षक के शिक्षण का अचूक शस्त्र होती है, उसे इसको व्यवहार में लाना चाहिए।

“नारायण की नाभी थी बड़ी उर्वरा खेत ॥

जिससे उपजे चतुर्मुखी, ब्रह्मा वेद समेत ॥

ब्रह्मा वेद समेत, लक्ष्मी थी बांझ बेचारी ॥

कान से पैदा किया मधु केवट बलधारी ॥

इसी कथा को करते रहते भक्त परायण ॥”-कवि छेदी पंडित

कितनी यातनाएँ, जटिलताएँ, दुःख, कष्ट सहकर आपको यह संसार दिखाया गया, कुछ कर गुजरने के लिए आपको जन्म दिया। जीवन अर्जित आपको करना है, आप पड़ गये दूसरे के सहारे, वह आपकी सारी आशाएँ, अपेक्षाएँ, आवश्यकताएँ पूरी कर दें तो आप क्या करेंगे?

10. विडम्बनाओं और पश्चातापों की समाप्ति:- जो कथ्य अथवा तथ्य तर्क, विवेक, विज्ञान, ज्ञान के धरातल पर सटीक न बैठे उनको तुरंत त्यागना एक सफल शिक्षक के



कुसुम

प्रभावपूर्ण शिक्षण की आवश्यक आवश्यकता है। अन्धकार में घुमने और घुमाने से ज्यादा अच्छा है। हम पुरुषार्थी, उत्साही, निर्भयी और निडर बने। माँ ने सारे बच्चों को एक जैसा पैदा किया है। हम जन्मजात स्वतंत्र, स्वाभिमानी, निष्ठावान और वीर हैं। फिर अधीर क्यों है? इस अधीरता का कारण वे लेविल तो नहीं हैं। जो संसार की सामाजिकता की उपज हैं, जिनको कुछ निकम्मों, निठल्लों, श्रम शोषकों, उत्पीड़कों ने मानवीयता के मार्ग में व्यवधान निर्मित करने और अपना उल्लू सीधा करने के उद्देश्य से रचा है। जिनकी कोई ऐसी ऐतिहासिकता नहीं है, मात्र मावन मन में भय और भ्रम पैदा करने के लक्ष्य को साधने के उद्देश्य से जिनका निर्माण किया गया है, जो ढोंग है, पाखण्ड है, चारण और भाटों के जीवन निर्वाह का साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं। कल्पनाएँ भी ऐसी-ऐसी जिनका न सिर है, न पैर है, फिर भी तथा कथित समाज के ठगिए उनको अपना हित के लिए साधने गतिमान बनाएँ हुए है।

आज के वैज्ञानिक युग में जब शिक्षा का प्रकाश हर दिशा में होने का अहसास दिला रहा है। फिर रहस्यों की रुग्णताओं को कोई स्वीकार करे। यदि ये अव्यावहारिकताएं शिक्षण में व्यवहार में लायी जाएँ तो शिक्षक को अनेक प्रश्नों का सामना करना पड़ सकता है। बहुत कुछ बदले जाने के पश्चात भी अभी ऐसा और बहुत कुछ है जिसको पाठ्यक्रम से तत्काल हटा देना चाहिए लेकिन अभी उसको हटाने का साहस नहीं किया जा रहा है। उसके साथ कुछ न कुछ बाध्यताएं बताकर रुग्णताओं को अभी पाठ्यक्रमों में समाहित कर रखा है जोकि अवैज्ञानिक चिन्तन की पोषक है। “कविता मात्र संघर्ष, विद्रोह, स्वाभिमान ही नहीं जगाती बल्कि समानता का भाव भी जगाती है। उपेक्षितों, पीड़ितों को जीने की राह दिखाती है। अन्याय के खिलाफ एक होकर लड़ना सिखाती हैं। आक्रोश, विद्रोह, संघर्ष, मानवीय संवेदना विकास, जनतंत्र का वास्तविक विकास, मानवीयता आदि कविता के स्रोत होते हैं।”¹³ यदि निर्द्वन्द्व और निश्चित होकर जीना है तो हमें स्वार्थपूर्ति हेतु थोपे गये कतिपय कलंकियों के लवादों को उतार कर फेंकना ही होगा क्योंकि ये सड़ गए हैं, इनमें कीड़े पड़ गये हैं। गन्दगी बजबजा रहीं हैं जो अभौतिक, अतार्किक और सारहीन हैं जो इसकी आयु बढ़ा रहे हैं इनको ढोते-ढोते वे अपनी आयु कमकर रहे हैं। एक बुराई को प्रोत्साहित कर रहे हैं ये उनकी देन है, जो किसी कीमत पर भी अंधेरा कायम रहे का संकल्प लेकर जीवन को जी रहे हैं। उल्लूक प्रवृत्ति के धनी विचारक, कवि, समाज सुधारक इत्यादि

11. जीवन में संचेतना और संचेष्टता का प्रतिपादन:- जब भाषा का शिक्षण किया जाता है। उसमें आचार-विचार और व्यवहार पर बल देकर जीवन को कैसे जिया जाय इस पर गम्भीरता से विचार किया जाता है। शेष विषयों के शिक्षण में विषय से सम्बन्धित पाठ्यक्रमानुसार जो भी चुना गया है उसको अध्यापित करते हुए उससे बचकर या हटकर जाना अपनी विषयवस्तु का उलंखन करना होता है। भाषा के शिक्षण में वे सब प्रतिमान संग्रहीत होते हैं जो जीने की दिशा निश्चित करते हैं। उनमें जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का समावेश होता है जबकि अन्य विषयों में ऐसा कम देखने को मिलता है। वह हमें सामाजिक सरोकारों से जोड़ता है। शिक्षक अपने शिक्षार्थियों के हित में उसकी विशद व्याख्या करके उनमें चारित्रिकता के गुणों को कूट-कूट कर भरने का प्रयास अपनी भाषा के द्वारा करता है। शिक्षक जीवन की गहराईयों को जान चुका होता है। उसके उत्थानों और पतनों से वह परिचित हो चुका होता है। अपनी जीवनानुभूतियों का समावेश वह अपने छात्रों के जीवन में इस प्रकार करता है। जिससे वे उत्तरोत्तर उत्थान, उत्कर्ष और उन्नयन के पथ पर अग्रसर होते रहें। अपनी संचेतना को वह दूसरों को संचेत और संचेष्ट करने हेतु वितरित करता है। भाषा के शिक्षण का एक मात्र उद्देश्य यही होता है कि छात्र के मस्तिष्क का परिमार्जन इस प्रकार किया जाय, जिससे वे जीवन को जीने की कला की बारीकियों को समझ कर जीवन की चुनतियों के समझ घुटने न टेके उनका पूरी दृढ़ता के साथ सामना करें। उत्साहवर्धन उद्देश्यों के प्रति सतत सचेष्ट अविस्मृतता को जगाते रहने का दायित्व भाषा शिक्षण द्वारा नैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि मूल्यों का समावेश एक शिक्षक द्वारा छात्रों में किया जाता है। छात्र उस पायदान पर होते हैं, जिसको शिक्षक पार चुके होते हैं। उसके सरल और विरल स्वभाव का उनको बोध होता है। “विकास और परम्परा इन दोनों का सम्बन्ध विच्छिन्न और अविच्छिन्न दोनों प्रकार का है। एक ओर तो पौराणिक जगत कृतिम भाषा भाव जगत, माया के साथ खेल, यह सब छोड़ कर हम प्रतीति चिन्तन भावना और अभिव्यंजन के नये तरीके अपनाते हैं दूसरी ओर हम अनुभव करते हैं की पौराणिक कल्पनाओं के वाबजूद व्यक्तियों ने अप्रत्यक्ष रूप से अपने समकालीन मानव जीवन का चित्रण किया है। ज्ञान का स्तर बदलने पर भी पुराने कवियों का इन्द्रिय बोध रूप, रस, गन्ध आदि गुणों वाले जगत की अनुभूति प्रकृति को देखकर उसका विस्मय उत्सुकता प्रेम आदि भाव उसके अनेक उदात्त मानवीय गुण और विचार ये सब ज्ञान का स्तर बदलने के लिए हमारे लिए मूल्यवान रहते हैं।”¹⁴ जब मूल्य करवट लेते, तब सारा परिदृश्य ही परिवर्तित हो जाता है। मूल्य किसी व्यक्ति के भी हो

कुसुम

सकते हैं, किसी राष्ट्र के अथवा उसके संचालकों के भी हो सकते हैं। वे कभी-कभी परिवर्धन को परिवर्तित होते हैं, कभी-कभी परिष्करण के स्थान पर परिवर्तन उन्हें विनाश के कगार पर ले जाकर खड़ा कर देता है जिस जीवन की संचेतना में दृढ़ता है, उदात्तता है, अतिरेक को परिष्कृत करने की परिकल्पना है। वह कभी अपने माथे पर हाथ मार कर पश्चाताप और प्रतिशोध की ज्वाला के समान धधकता नहीं है। वह अपनी गुप्त सम्भावनाओं को परिष्कृत करके उसको सकारात्मकता प्रदान करता है।

12. दायित्व बोध का निष्ठापूर्वक जीवन मूल्यों में निर्वहन:- आज के बदलते परिवेश में दो प्रवृत्तियाँ तेजी से मानव मस्तिष्क में अपनी जगह बनाती जा रही है। पहली है सीखने के स्थान पर सिखाने की प्रवृत्ति और दूसरी है जाने बिना जनाने की प्रवृत्ति। दोनों ही मानव जीवन की चिन्ताओं को कम करने वाली नहीं उनको बढ़ाने वाली हैं। इसी तरह अधिकारों के स्वरूपों का उपभोग और उपयोग करने की कुचेष्टा बिना दायित्वों का निर्वहन किए करने की आदत सी बनती जा रही है। दायित्व तो छोटे-बड़े सबके जीवन के साथ जुड़े हैं। प्रश्न ये है कौन उनको अधिक गम्भीरता से लेकर उनका निष्ठा के साथ निर्वहन करने की दिशा में अग्रसर होता है। अधिकांश का भाव दायित्वों के प्रति उपेक्षा का प्रदर्शन ही होता है। वे अपनी कुछ ऐसी ताजा लालसाओं के शिकार हो जाते हैं, जिनकी उलझनों को सुलझाने के बाद उनके पास इतना समय ही कहाँ बचता है। लेकिन जब दायित्व का बोध जीवन के मूल्यों के साथ एकाकार हो जाता है तब जीवन को यदि जीना है तो उनकी उपेक्षा सम्भव नहीं इसके विपरीत यदि जीवन को जीने से ही मुख मोड़ लिया तो उसका कोई उपचार नहीं।

भाषा शिक्षण के द्वारा अनेकानेक उदाहरणों के माध्यम शिक्षकों के द्वारा छात्रों के चेतन को को हिला-हिला कर उसको जगाया, बताया, समझाया और सुनाया जाता है कि आने वाले चुनौतीपूर्ण समय में आपको अपने उत्कर्ष के साथ सामाजिक, पारिवारिक और कौटुम्बिक मूल्यों का किस प्रकार निर्वहन कर अपनी छवि को अक्षुण्य रखना है। उनके चिन्तन को बार-बार इस दिशा की ओर इंगित किया जाता है कि अपने व्यक्तिगत कार्यों के साथ-साथ समाज के प्रति, परिवार और राष्ट्र के प्रति हमारे जो दायित्व है। कहीं हम उनके निर्वहन के मार्ग से च्युत तो नहीं हो रहे। “बन्धुत्व और समता, सभ्यता तथा प्रेम सामाजिक जीवन आरम्भ से ही आदर्शवादियों का सुनहला स्वप्न रहे हैं। धर्म प्रवर्तकों ने धार्मिक, नैतिक और आध्यात्मिक बन्धनों से इस स्वप्न को सच्चाई बनाने का सतत किन्तु निष्फल यत्न किया है। महात्मा



कुसुम

बुध्द, हजरत ईसा, हजरत मुहम्मद आदि सभी पैगम्बरों ने धर्म प्रवर्तकों ने नीति की नींव पर इस समता की इमारत खड़ी करनी चाही, पर किसी को सफलता न मिली और छोटे-बड़े का भेद जिस निष्ठुर रूप में प्रकट हो रहा है शायद कभी नहीं हुआ था ।”15 जो छात्र अपने दायित्व के विरोध में कार्य करने को आतुर हैं भाषा के शिक्षण के माध्यम से उनको उनके दायित्वों की याद दिलाई जाती है । पग-पग पर उनमें उन मानवीय मूल्यों का सृजन किया जाता है जिनमें भावुकता है । भावों को उद्देलित करने वाली भव्यताएं हैं । सम्वेदनाएँ और दायित्व बोध की महक बसी है । उनकी स्मृति के पटल पर इन तथ्यों की निरन्तर पुनरावृत्ति की जाती है । वे अपने को अपनी जिम्मेदारियों के प्रति सदा सचेत और सचेष्ट रखें । समाज के ताने-बाने में उसे सुदृढ़ करने में युवाओं की सदा से महान भूमिका रहीं हैं वे इसे अनुभूत करें, उसका निर्वहन करें, ऐसी आशा समाज उनसे करता है ।

13. जीवन के लक्ष्यों को सुनिश्चित करने में मूल्य परक शिक्षा का योगदान:-

सीखना अविरल चलने वाली एक सतत प्रक्रिया है । कोई भी जीव जब पहली बार से अन्तिम वार तक इस सृष्टि को उसकी दृष्टि देखती है यह प्रक्रिया चलती रहती है कोई भी जीव आज तक अपने में न तो पूर्ण हुआ है । भविष्य में किसी के कभी पूर्ण होने की आशा भी नहीं की जा सकती । न्यूनताएं न्यूनाधिक सभी के जीवन में थीं, हैं और भविष्य में भी रहेंगी । सारे क्षेत्रों में सर्वोच्चता किसी से भी प्राप्त नहीं हुई । छात्र कितना भी पारंगत हो, श्रेष्ठ हो, बुद्धिमान हो, विद्वान् हो, लेकिन जब वह अपने शिक्षक के समक्ष आता है तब वह किसी उत्पाद के कच्चे माल की भांति होता है । वह जिस क्षेत्र में जाना चाहता है । उस में जाने हेतु कुछ ऐसा अवश्य होता है जिसको जानने उसे अपने गुरु की शरण लेनी पड़ती है यदि ऐसा न होता तो विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएं अस्तित्व में न आतीं । बहुमुखी और बहुआयामी शिक्षण संस्थाओं के अस्तित्व में आने का कारण यही है कि छात्र बहुमुखी और बहुआयामी होने के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं । कबीर ने कहा था-

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है, गढ़-गढ़ काढ़े खोट ॥

अन्तर हाथ सहार दे, बाहर मारे चोट ॥ --बीजक - साखी

भाषा शिक्षण के द्वारा जो मूल्य परक शिक्षा दी जाती है । छात्र उसको तन्मयता से ग्रहण करके सम्पूर्ण गम्भीरता के साथ अपने गंतव्यों का निर्धारण कर लेते हैं । किसकी रुचि किस ओर है , वह उस दिशा की ओर बढ़ने हेतु अपने शिक्षक से विचार करके उस पथ में आने वाली कठिनाइयों अथवा सुगमताओं के वारे में गम्भीर चिन्तन करता है । एक सुयोग्य



कुसुम

शिक्षक अपने जीवनानुभवों के आधार पर उसको अपना जीवन पथ बनाने में सहयोग करता है । ये लक्ष्य तभी निश्चित और निर्धारित होते हैं जब छात्रों को मूल्य परक शिक्षा प्रदान की जाती है । मूल्य परक शिक्षा से कोई भी छात्र अपने जीवन को उसके मूल्य को और उसमें समाहित किए जाने वाले अन्य मूल्यों को तल्लीनता से ग्रहण करता है । शिक्षा जीवन को आर-पर देखने की दृष्टि उपलब्ध करती है । इसके साथ छात्र के अपने प्रयास और शिक्षक सहयोग दोनों महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । “मूल्यों के विकास के आभाव में मनुष्य व्यक्तिगत रूप से चाहे जितनी सुख सुविधा जुटा ले, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर लें । समाज में सुख एवं शान्ति कायम नहीं हो सकती । यही कारण है कि भौतिक दृष्टि से प्रगति के बावजूद देश को अराजकता के दौर से गुजरना पड़ रहा है । क्षुद्र स्वार्थों की परिपूर्ति के लिए क्षेत्रवाद, भाषावाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद जैसे विवादों को बढ़ावा देकर राष्ट्रीयता के भाव को कुंठित किया जा रहा है फलतः अब राष्ट्र की अस्मिता पर प्रश्न चिन्हन लगने लगा है ।”¹⁶ यदि मूल्य परक शिक्षा का अभाव होगा तो हूंचा-हांची, खीचा-खाची, आपा-धापी जैसी परिस्थितियों का उत्पन्न होना अवश्यम्भावी है । मूल्य ही तो मानव चिन्तन को उसके गिरवान की ओर उसकी मनोदशा को इंगित करते हैं । वह अपने और अपने कृत्यों को देखने के लिए बाध्य होता है । उसे उचित, अनुचित का बोध सताता है । मूल्यविहीन जीवन तो पशुता का जीवन हो गया । कोई बाधा, व्यवधान, अवरोध नहीं, जी आए जो करो, फिर भरो और मरो इति-

14. सार्थक आदर्श जीवन मूल्यों का सामाजिक महत्व:- सार्थक आदर्श जीवन मूल्य उस तीक्ष्ण लों की भांति होते हैं । जो गहनतम अंधकार के सीने को चीर स्वयं को दिखाने और दूसरों का पथ आलोकित करने का कार्य करते हैं । भीड़ कितनी भी भारी हो एक मूल्यवान जीवन वाला चाहे कितना भी अकेला क्यों न हो वह मूल्य विहीन भीड़ पर बहुत भारी पड़ता है । संसार में अनेक प्रजालब्ध साधु, संत, महात्मा, भिक्षुक, मुनि, अध्येता और सन्यासी हुए, जिनके पीछे लाखों लाख मर मिटने को चल पड़े । कारण क्या था उनके जीवन में मूल्य थे । वे करुणा, दया, मैत्री, समता, समानता, न्याय, बन्धुत्व, सदभाव का प्रचार, प्रसार और विस्तार करने की योजना बनाकर अपने घर से निकले और सारा संसार उनका घर हो गया । मूल्य परिपूर्ण जीवन की कान्ति आँखों में चकाचौंध पैदा करती है । कोई संसार को जरूर अकेला दिखता होगा, लेकिन वास्तविक अर्थों में वह अकेला होता नहीं । उसकी अपने जीवन को जीने की सारी मान्यताएं, मर्यादाएं, नैतिकताएं हमेशा उसके चारों ओर होती हैं, वह



कुसुम

उनसे अपने को विलग करके भटक नहीं सकता क्योंकि वे उसके प्राणों को सजीव रख उसका पथ आलोकित करती हैं । जिसने भी जीवन को अपनी शर्तों पर जीया उसके रास्ते में दुश्वारियाँ तो आयीं लेकिन वह आदर्श बन गया । समाज का दृष्टिकोण उसके प्रति जहाँ एक ओर आदरभाव, मान-सम्मान का बनता है । वहीं दूसरी ओर अनेकानेक सामाजिक अपेक्षाएं भी उससे जुड़ जाती हैं फिर वह अपने रूप में नहीं रह पता, जिस रूप में वह रहता है, उसको उस रूप में रहना पड़ता है जिस रूप में समाज उसे देखना चाहता है । बाध्य होकर उसको समाज के दिए स्वरूप को स्वीकार करके जीवन को जीना होता है । “जो मैं यहाँ देख रहा हूँ वह भी जीवन है और जहाँ से मैं आ रहा हूँ वहाँ भी जीवन है । उस पर चाहे कितना भी भयंकर दबाव क्यों न डाला जाए । जीवन अविनाशी है । उसे एक स्थान पर दवा दिया जा सकता है पर वह सैकड़ों दूसरे स्थानों पर फूट निकलेगा । यह जीवन है और वह सदा मृत्यु से अधिक शक्तिशाली है ।” 17 जो सार्थक जीवन मूल्यों को अपने जीवन में उतार लेते हैं । वे लोग मृत्युंजय बन जाते हैं । मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते हैं । कबीर ने साफ कहा था -

हम न मरि हैं मरी हैं संसारा, हमको मिला जियावन हरा ।

भाषा शिक्षण के द्वारा जीवन को सार्थक जीवन मूल्यों से सरावोर किया जा सकता है। शर्त है जीने वाले में जीवततामय जिजीविषा आद्यन्त भरी हो । वह अपने निश्चयों के प्रति संकल्पबद्ध हो, अडिग और अटल हो, तब वह समाज का आदर्श बनने की श्रेणी में आ सकता है । भग्ग रागों, भग्ग दोषों, भग्ग मोहो इति भगवत्ता । जिस राह को चुन लिया, चुन लिया फिर पीछे मुड़कर क्या देखना । ऐसे एकाग्रचित वाले ही ऐसे जीवन पथ का निर्माण कर सके हैं । जिसका सुख उनके साथ और उनके बाद भी सारे संसार ने भोगा है । भाषा शिक्षण द्वारा प्रत्येक शिक्षार्थी के जीवन में और उनके जीवन मूल्यों में चेतना का सृजन किया जा सकता है ।

सन्दर्भ सूची:-

1. स्टालिन जे.वि., प्रकाश शशि, भाषा और राष्ट्रीय भाषा की समस्याएँ, उत्तराध्द पृष्ठ-26
2. सक्सैना प्रदीप, जनवादी साहित्य मूल्य और अवधारणाएं, पृष्ठ-68
3. शर्मा डॉ राम विलास, यथार्थ जगत और साहित्य, पृष्ठ-94
4. अम्बेडकर डॉ. बी.आर, भारतीय संविधान अनुच्छेद 375,
5. शर्मा डॉ. आर. बी., भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिन्दी खण्ड-एक, पृष्ठ-22



कुसुम

6. मालवीय डॉ. राजीव, शैक्षिक तकनीक एवं प्रबन्धन,
7. सुरेश्वर महेश, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्य एवं अध्यात्म की आवश्यकता, 2011 भारतीय आधुनिक शिक्षा जनवरी एन.सी.ई.आर.टी.
8. संत कबीर कबीर ग्रन्थावली,
9. पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त, पृष्ठ-575
10. शर्मा डॉ.आर.वी., यथार्थ जगत और साहित्य,
11. हिन्दी अनुशीलन, मार्च-जून, 2006, संयुक्तांक 1-2, पृष्ठ-97
12. दलित साहित्य 2008, सम्पादक, जय प्रकाश कर्दम
13. दलित कविता: चिन्तन से जगती चेतना, डॉ. अशोक एस. पवार, पृष्ठ-215
14. शर्मा डॉ.आर.बी., यथार्थ जगत और साहित्य, उत्तरार्द्ध पृष्ठ-101
15. मुंशी प्रेमचन्द, साहित्य का उद्देश्य, पृष्ठ-87
16. बाबु डॉ. राजेन्द्र शर्मा डॉ. बृजबाला, प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ-118
17. फ्युचिक जुलियस, फ्राँसी के तख्ते से, उत्तरार्द्ध त्रमासिक विशेषांक से संकलित पृष्ठ-80

